अष्टौतीसोड़थ्याकः
कर्मणः

अर्जुन उपाय—

ख्यातसी चन्त कर्मणः ते मता वृद्धिपुर्वक जनार्दनः
तत् किं कर्मणि चोरे मां निमत्तपति केदारः ||११

्यावर्तते यज्ञेऽरथ वृद्धिः मोहिन्यायामेवः
तेऽव एव वद निशिचत्य येन श्रेयोऽश्च आनुः ||२

अर्जुन बोले— विद्वता कर्म से ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं,
तो फिर, हे केदार, आप मुझ इस भक्तिकर्म में क्यों लगा रहे हैं?
आप निशिचत वचनों से मेरी वृद्धि को श्रमित कर रहे हैं. अतः आप
उस एक बात को निशिचत रूप से कहिए, जिससे मेरा कल्याण हो.
(3.०८-०२)

श्रीभोगवान्याचः

०कोशिन् दिविका निम्ना पुरा प्रोक्ता मयासनपः
झानयोगेन संध्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ||३

श्रीभोगवान् बोले— हे निष्ठापुरुष, इस लोक में दो प्रकार को
निम्ना मेरा द्वारा पहले कहती गई है, जिनको रांच झान में होती है,
उनकी निम्ना झानयोग से और कर्म में संचिताओं की निम्ना
कर्माणि से होती है. (3.०३)

झानयोग को संवेदन्योग या संन्यासयोग भी कहा जाता है.
झानयोगी सवार को किसी भी कर्म का कार्य नहीं मानता. झान का
अर्थ है तत्सत्त्वित अत्यन्तर्गत झान. यहां यह भी बताया जरूरी है कि
झानयोग और कर्मयोग दोनों ही प्रकारों की उपलब्धि के साधन हैं.
झीवन में इन दोनों मार्ग का समय श्रेष्ठ माना जाता है. हमें
आत्मान क्रिया साधना और निर्वाचन सेवा दोनों को अपने जीवन का
काल बनाया चाहिए.

न कर्मणुम अनार्मानं नेत्रकार्य पुरुसोऽस्तु
न च संन्यसनातु एव सिद्धिः समधिऽऽभूति ||४


अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी

मनुष्य कर्म का त्यागकर कर्म के बन्धों से मुक्त नहीं होता। कर्म के त्याग मात्र से ही सिद्धिः की प्राप्ति नहीं होती। (3.06)

न हि कशिच नष्णमपि जात निष्ण्यः अकर्मकृतः।
कार्येन हि अवश्यः कर्म सर्वं प्रकृतिजज्ञेषु सुः। (3.07)

कोई भी मनुष्य एक याद भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता, क्योंकि प्रकृति के गुणों द्वारा मनुष्यों से परवर्त्ता की तरह सभी कर्म करना लिए जाते हैं। (3.08)

विचार, शब्द और क्रिया से प्रसूत कर्म का पूर्ण त्याग किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। अतः ज्ञातिः को हेमश्रा अपनी शिष्य के साधनों से प्रभुसेवा में सक्रिय रहना चाहिए, क्योंकि खाली दिमाग शैतान का घर है। आकंडाविहीन मन-स्थिति के साथ आन्तरण कर्म करते रहना कर्मलाभ तथा प्रमुखता के बाद नितांत तापस जीवन, दोनों से श्रेष्ठता है, क्योंकि तापस भी कर्म के आचरण से मुक्त नहीं हो पाता।

कर्मविच्छेदण संयम्य य आस्तं मनसा स्मरणू।
इन्द्रायणान्तृ विपुलाद्वा कियावाचारः स उच्चते॥४॥

जो मुझूदिधिम मनुष्य इंद्रियों को (प्रदर्शन के लिए) रोककर मन द्वारा निष्ण्यों का उत्पाद करता रहता है, वह मनोराज आता जाता है। (3.09)

दूसरी की सेवा क्यों?

यस् तथा इन्द्रायणि मनसा नियमपरिवेदन्तं।
कर्मन्निवेदये कर्मयोगम् अस्वयम् स विशिष्यते॥५॥

परस्पर अर्जन, जो मनुष्य वृद्धि द्वारा अपनी इंद्रियों को वदा में करके, अनाथाद के करके, कर्मविच्छेद द्वारा निष्ण्य कर्मयोग का आचरण करता है, वह हृदंब है। (3.10)

निविष्णु कर्म त्वं कर्म ज्यायो हृद अकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदु अकर्मणं॥६॥
श्रीमदभगवदगीता

तुम अपने कर्त्त्व का भान न करो, क्योंकि कर्म न करने से कर्म करना बेशर है तथा कर्म न करने से तेरे शरीर का निरवह भी नहीं होगा. (3.08)

यज्ञार्थं कर्माङ्गोपन्य लोकोद्वारं कर्मकर्मविशा।
	तत्त्वं कर्म कीतं युक्तस्तवं समाचारं।।१५१।

cेवल अपने लिए कर्म करने से मनुष्य कर्मबन्ध से बच जाता है, इसलिए हम अर्जिन, कर्मफल को आश्वस्त त्यागकर सेवागार से भलीभांति अपने कर्मबन्ध का भान करो. (3.09)

पदः का अर्थ है लागा, नित्यार्थ सेवा, निदान कर्म, पृष्ठ कार्य, दान, देवों के लिए वो गई हैवि — हमने के मामले से — के साथ की गई पुजा आदि.

परस्परिक सहयोग विभाग का पहला निर्देश

सहयोगः प्रजा: सुदूरा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसावधयम्, एष योगस्य इदस्यामयुक्त॥१५१॥

सूचिकर्ता ब्राह्मण ने सूचना के आदि में यह (अथंत नित्यार्थ सेवा) के साथ प्रजा का निर्माण कर कहा — “इस यह द्वारा तुम लोग वृद्धि प्राप्त करो और यह यह तुम लोगों को इस्तेल देनेवाला हो.” (3.10)

देवानं भावयनानेन ते देवा भावयनतु कः।

परस्परं भावयतनं: श्रेयं परमं अवायशं।।१५१॥

तुम लोग यह द्वारा देवताओं को उत्तर करो और देवगण तुम लोगों को उत्तर करें हैं तुम परम कर्मण को प्राप्त करो. (3.11)

देव का अर्थ है परमप्रथा का प्रतिनिधि, अलोकिक शासक, दिव्य पुरुष, वह शालिक, जो इश्वासों की पूर्वित करता है, जो निमत्ता और म्याक है. सूचिज्ञ अपना जीवन दूसरों की सेवा करके सफल बनाते हैं, जबकि मुख्य लोग दूसरों को हानि पहुंचाकर भी अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं. अक्षेत्र विभेद करने की इम्का रखेंगे के लिए स्वर्ग के द्वार भी बन्द रहेंगे. देवों के अनुसार दूसरों की
अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी

सहायता करना व्यक्ति के लिए क्षेत्र प्रृथ्वी कर्म है। “एक दूसरे की सेवा करना” सूचित ब्रह्मा का प्रथम आदेश है, जिसे महावान कृष्ण ने गीता में पूर्ण रूप से बताया है।

इत्यादि सोवान भी देवा दायें यहभाविता।।

तैर दानानु अभिवाद्यो यो शुद्धके स्तन एव स।।

यह द्वारा पोषित देवाण तुव्य हिन्दुस्तान प्राप्त करेंगे। देवाओं के द्वारा लिए हुए भगवान के जो मूर्त्ति उन्हें निम्न लिए अनकाल सेवन करता है, यह नियंत्रण हो चाहे है। (१.१२)

यहाँ भगवान ने देवों और मानवों में, मानव और मानव में, श्रद्धा और श्रद्धा में तथा विश्व भावित भावित प्रकृतियों में विभिन्नता-विभिन्न सहभाग-भाग की और संकेत किया है। जीवन की सभी आवश्यकताओं की पुर्त्ति अन्य लोगों की ल्यागमी सेवाओं से होती है। अामा जान ही एक दूसरे पर निर्भर होने के लिए हुआ है। स्वामी चिन्यानद में विश्व की सहभागिता का ब्रह्माण्ड-ब्रह्म कहा है। व्यक्ति और समाज दोनों की प्रगति में विभिन्नता की अपेक्षा सहभागिता अधिक लान्दायक है। सहभागिता और दूसरों की सहायता के बिना किसी भी साध्यक काम की सिद्धिविहीन हो सकती। भगवान भगवान को भी अपने काम में दूसरों की सहायता लेनी पड़ी थी। यह विश्व शक्ति स्थान होंगा, यदि परस्पर लड़ने या होड़ करने की आपेक्षा इसके सारे निवारण एक दूसरे को सहयोग और सहायता दे। स्वामीपुर्ण उदेश्य ही आध्यात्मिक संस्कृतियों को भी परस्परित सहयोग से रोकता है, जिसके कारण स्तनन कदन के विश्व में विश्व रूप से प्रभाव-प्रभाव नहीं हो पाता है।

यहाँपाद्यालि: सनो मुख्यन सर्वकिन्तु:।।

भूजने ते त्यु अनं याः ये पर्वतनाभ्रमकाष्ठाः।।

यह से जब हुए अब को खानेवाले बंद मूर्ति सब पापों से मुक्त हो जाते हैं, परन्तु जो तांग केवल अपने लिए ही अपन पकान हैं, वे पाप के भाने तो हैं। (२ वृ. १२.८६) (३.१२)

भूजन भगवान के लिए पकाया जाना चाहिए और उपभोग से पूर्व प्रेमपूर्वक भगवान को अपेक्षित लिया जाना चाहिए। बाबू हो भूजन करने से पूर्व प्रार्थना करना सिखाया जाना चाहिए। प्रार्थना
श्रीमदभगवदगीता

और प्रथा को धन्यवाद देने से पहले भोजन ग्रहण न करना गृहस्थ का निषेध होना चाहिए।

अद्वैत प्रवचन मूलानि पर्यन्त अपरस्पर
यज्ञादु भवति पर्यन्त यज्ञ: कर्मसङ्गम्रूऽ
कर्म ब्राह्मणवं विद्रिम ब्राह्मणरसमुद्रम्
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म निःश्च येके प्रतिपद्मः

रामकथा के ब्राह्मण का नाम ब्रह्म है। ब्राह्मण भारत में पौराणिक वर्ग का नाम है।

एवं प्रवचनं चर्कः नानुकर्यतन्ते। याः
अध्याय इतिविरामं भोषों पार्थ स जीवितोऽत्

हे पार्थ, जो मनुष्य सेवा द्वारा इस सृष्टिक्रम के चलने रहने में सहयोग नहीं देता है, वैसा पार्थ, भोगी मनुष्य वर्ष ही जीता है।

(3.16)

गेहुः का दान भूषण में डाले जाने और समा जाने के बिा
मात्र एक दान है। बलिदान होने पर ही वह अनेक दानों को जन्म देता है (वाग्न 12.26)। सन्तान, और, सहित और पृथवी दूसरे के
उपयोग के लिए ही है।

यस्य त्वात्मसर्वते एव स्यात् आद्यनुनस्य नानापर
आदिनिव च सन्तुद्धम् तत्स्य कार्यः न विचारे।

परन्तु जो मनुष्य परमार्थ में ही समय करता है तथा परमार्थ में ही
तुष्प और सन्तुष्ट रहता है, वैसे आदिनाती मनुष्य के लिए कोई
कर्तव्य झोप नहीं रहता। (3.17)

समस्त किर्म्यं, दायित्वं, निषेधं, निर्यम और प्रतिक्रिया
बत्ति को पूर्णता की ओर ले जाने के लिए ही हैं। पूर्ण योगी के लिए
कोई भी साश्चात्यक दायित्व नहीं है।
6 अन्तर्भाषीय गीता सोसायटी

नैव तत्त्व कृतनाथों नाकृतनाथ कर्त्तन।
न चास्य सर्वभुतेषु कस्मिनृ अर्थ्ययमाथ॥१८॥

उसका कर्म करने से या न करने से कोई प्रयोजन नहीं रहता तथा वह (परमात्मा के लिए) किसी और प्राणी पर आश्रित नहीं रहता।
(३.१८)

नेता उदाहरण बने
तमादु असकन सलन कार्य कर्म समाचर।
असकतो धार्यन कर्म परमु आश्रित पूर्णः ॥१९॥

इसलिए तुम अनासक्त होकर सदा अपने कर्मयोग का भलोभावित पालन करों, क्योंकि अनासक्त रहकर कर्म करने से ही मनुष्य परमात्मा का प्राप्त करना है। (३.१९)

कर्मयोग-दर्शन — नानावता के कल्याण के लिए निःश्वास सम्बन्धः का प्रतिच्छमण श्रीमदभगवदगीता से पुर्व हिन्दुमूर्ति वीर दार्शनिक ग्रंथ में इतना सुदर नहीं हुआ है। परोपकारिता के आदर्श को भगवान कृष्ण ने पूजा और साधना के क्षेत्रमें रूप के स्तर पर उठाकर रख दिया है। निःश्वास में से व्यक्ति को शालीनता मिलती है, शालीनता से आस्था और आस्था से परम सत्य की प्रतीति होती है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है: परोपकारी कार्य से हमारे सरीर में कुम्भकरणी और सराहिता जा प्राप्त होती है।

कर्मयोग हि संस्कृतिवाच्यः आश्चर्यानि जनकादं।
लोकस्थलपर्याप्ति संप्रदयन कृतमु अवस्थि ॥१०॥

राजा जनक आदि जनावरानि निःश्वास कर्मयोग द्वारा परम सत्यमें को प्राप्त हुए थे। द्वारकायोग के लिए भी तुरारा कर्म करना ही उचित है। (३.२०)

निःश्वास सेवा करनेवाले कर्म से नहीं बद्ध होते हैं और मुक्ति को प्राप्त करते हैं (विक्रु. १.२२-२३)। दूसरों के हित का ध्यान रखनेवालों की पहुंच तो बऱ्यात नहीं है। स्वामी हरिहर जी कहते हैं: नानावता की निःश्वास सेवा ही प्राप्त की सच्ची सेवा और क्षेत्रमें पूजा है।
यदृ यदृ आचरण श्रेष्ठस् तन्त्र तदृ एवेना जन:।
स यत् प्रामणं कुलेऽ लोकस् तदृ अनुरते।।

श्रद्धा मनुष्य जैसा आचरण करता है, दुमरे लोग भी वैसा ही आचरण करते हैं। यह जो आदर्श बताता है, जनसमूहाय उसीका अनुरुपता करता है। (३२१)

लोग महायुगों का अनुरुपता करते हैं (भ.पु. ५०४.७५)।
मैंने तुम्हारे सामने एक चरित्रप्रस्तुत किया है, ताकि तुम वही करोज जो मैंने तुम्हारे लिए किया है (भ.पु. ४९३)।

न में पार्थज्ञम कर्त्यं विषु लोकेषु किमुः।
नानवानम् अवारथ्यं वर्ण एव च कर्मणि।।
हे पार्थ, तीनो लोकों में न तो मेरा कोई कर्त्य है और न कोई भी प्रणाल करने योग्य वर्तमान स्थान है, फिर भी मैं कर्म करता हूँ। (३२२)

यदि यदि न वर्त्येऽ जातु कर्मण्यवन्द्वः।
यम वर्मणुर्वतनात् मनुष्यः पार्थ सर्ववेषः।।
उन्दा देवरुर इम्य लोका न कृत्यः कर्म चेदू अहम्।
संकरस्य त वर्मणः स्याः उपहन्याः इमः प्रजा।।
क्योंकि यदि मैं साधनान्हों होकर कर्म न करूँ तो, हे पार्थ, मनुष्य मेरे ही पार्श्व का अनुरुपता करेंगे। इसलिए यदि मैं कर्म न करूँ, तो ये सब लोक नष्ट हो जाएंगे और मैं ही इनके विनाश का तथा अरोजनका का कारण मुझा। (३२३-२४)

सकात्स: कर्मणुः अविद्राम्भं यथा कर्त्यं भारत।
कृत्यं विद्राम्भं तथाकाडः विद्राम्भवेशु लोकांग्रहम्।।
हे भारत, अझानो लोग जिस प्रकार कर्मरूप में आसक्त होकर बलीभावन्त अपना कर्म करते हैं, उसी प्रकार ज्ञानो मनुष्य भी जननुसारण हेतु आसक्तिरहित होकर बलीभावन्त अपना कर्म करें। (३.२५)
न बुद्धिमयं जनयिद्वः अज्ञाना कर्मसहिनाम्।
असंहाश्च सर्वकमण्णि विद्रान्युक्तं संभवचरं।

अन्तरान्त्रः गीता सोसायतो।

नामां कर्मफलं अरस्यन् अज्ञानं बुद्धिभिनारः।
अत्याधूतं न कर्ता तथा स्वयं (अनासवन शोक) सम्पत
कर्मं को भलीभारत करता हुआ इससे को भी बैसा हो करने का 
प्रेमणा द्। (२४.२८ भी देख।) (३.२६)

प्रतिभा-सम्पत्त्वा व्यक्ति के महत्त्व उसके दो विरोधी विचारों और 
विरोधाभासों को संग्रहण की जमलों में है; इसी संसार में 
निरसावत आराधना के साथ जीना। अधिकांश व्यक्ति केवल तभी 
परिश्रमपूर्वक काम करते हैं, जब उन्हें कर्मफल के धोखा या आर्थिक 
की प्राप्ति की प्रस्तुति उल्लिखि या करने का प्रेमणा देती है। ऐसे 
व्यक्तियों को हतोत्साहित नहीं करना चाहिए, न उनकी महत्त्व 
करना जरूरी है। सम्पत्ति के प्रति आस्थाक आस्थाक, न कि व्यय 
सम्पत्ति, दुःख का कारण बनती है। जिस प्रकार व्यक्ति के लिपि पूजा, 
प्रार्थना आदि करने में पूर्ण एकाग्रता जरूरी है, इसी प्रकार व्यक्ति के 
लिपि सांसारिक कार्यों की पूर्णता में भी समृद्धता ध्यानावस्थित होना 
आवश्यक है, पूर्णता तथा यह भी जानने हुए कि संसार और इसके 
क्रिया-काल क्षणिक है, संसारी है। सांसारिक कार्यों की अवेलना 
करने व्यक्ति को भगवान के ध्यान में रत नहीं रहना चाहिए। श्री 
योगाननं जी का कथा है— ध्यान के प्रति भी ज्ञान नहीं रखे 
ञिचनी ध्यानपार्थ्य में। व्यक्ति को केवल एकतरफा जीवन नहीं जीना 
चाहिए।

सभी कर्म प्रकृति करती है 

प्रकृत्वे क्रियमाणि गुणं कर्मणि सर्वं।
अहकारिवमुद्दतान् कर्मान्धुि हि तनं नरन।

वासन में संसार के सारे कार्य प्रकृति मा के गुणार्थी परस्पर 
को शक्ति के द्वारा हो किए जाते हैं, परंतु अज्ञानवाल नमुना 
अपनेात्मा को हिं कर्म समझ लेता है (तथा कर्मफल को 
आर्थिक) पश्चात्मा से बंध जाता है। मनुष्य तो परम शक्ति के 
हास को कठोपक साधृत है)। (३.२६, ३१.२६, १४.१९ भी देख।)

(३.२७)
श्रीमद्भगवदगीता

ईश्वर सब कर्मों का कर्ता है, सब कुछ प्रेम की इच्छा के अभीन है। व्यक्ति स्वयं की मृत्यु के लिए भी स्वतंत्र नहीं है। व्यक्ति तब तक प्रयत्न नहीं कर सकता, जब तक वह यह सोचता है कि
मैं ही करता हूँ। ईश्वर की कृपा से पत्ते उसे यह अनुमान हो जाती है कि वह करता नहीं है, तो वह जीवनानुभूत हो जाता है। हम्मी करता है, हम्मी भोकता है, ऐसा विचार कर्मभांग ने जन्म देता है। आतमश्री का
व्यक्ति के लिए किया गया एक ही काम प्रतिवेष्ट कर्म आधारित हो जाता है और कर्मभांग को जन्म नहीं देता, व्यक्ति का आतमश्री का स्वयं को करता या भोकता नहीं मानता। सामान्य-जन द्वारा किया गया काम
कर्मभांग को जन्म देता है।

तन्त्रविश्व ने महावाहो गुणकर्मसंपेक्षः
गुणा गुणणेश वर्तन्न इति मद्या न सज्जने।

परन्तु हे महावाहो, गुण और कर्म के स्वरुप को जाननेवाले ज्ञानी भूत स्वरूप ऐसा समझकर कि (इनपर में) प्रकृति के गुण ही सारे कर्म करते हैं (तथा मनुष्य कुछ भी नहीं करता है) कर्म में आसक्त
नहीं होता। (3.28)

प्रकृतिने गुणसंभूतः सज्जने गुणकर्मसु।

तानु अकृत्तनिविदो नद्यानु, कृत्तनिवित्र न बिचालयते। (3.29)

प्रकृति के गुणों द्वारा मोहित होकर अज्ञानी मनुष्य गुणों के (द्वारा किए गए) कर्मों में आसक्त रहते हैं, उन्हें ज्ञानी मनुष्य स्वयं कर्म के मायासे से विच्युतित न करें। (3.26 भी देखें) (3.29)

प्रकृतिके भाषको प्रकृति की शास्त्रों के सामने में स्वार्थ सिद्धियों के लिए किए जानेवाले कामों से अज्ञानी को हृदस्तान्तित या विश्वस्व नहीं करना चाहिए, व्यक्ति प्रारंभिक अवस्था में कर्मयोग के स्थान पर कर्म स्वतंत्र होना ही अन्त में उन्हें ब्रह्माजन की
कर्त्तव्य सर्वाणि कर्माणि संयमायाग्न्येतेनस।
निराधारं निर्मयो भूता। गुणसम्य कित्तनात्मः। (3.30)

अन्तर्द्रष्ट्रीय गीता सोसायटी

पुड़म चिं नगकर, सम्पूर्ण कर्म (के फल) को पुड़म अर्पण करके, आत्मा, यमक और संतापशिन होकर अपना कर्मय (पुड़म) करा। (२.३०)

ये मे मतम है नवत्मू अनुल्लितन मानवा।
अवधारणायोडनमण्यो मुख्यने तेजि कर्मभि। (३.३१)

ये तेजतु अवधारणायो नानुल्लितन मे मतम।
सर्वहानविमृद्दस् तानू विस्ती नयानु अनेतस। (३.३२)

जो मनुष्य बिना आनोखणा किए, अवधारणा के प्रेरणा उपयुक्त का सराह पालन करते हैं, वे कर्म के बत्तन से मुख्य हो जाते हैं; प्रति जो आनोखणा प्रेरणा उपयुक्त का पालन नहीं करते, उन्हें अज्ञानी, वियेक्षीन तथा खोजा हुआ समझना चाहिए। (३.३१-३२)

साहुर चेदने स्वभावः प्रकृतेऽ ज्ञानाचान अपि।
प्रकृति यानि भूतानि निग्रह किं कर्मयानि। (३.३३)

सभी प्राणी अपने स्वभाव-व्यवहार ही कर्म करते हैं। ज्ञानी भी अपनी प्रकृति के अनुसार ही कार्य करता है। फिर इन्द्रियों के निग्रह का क्या प्रयोजन है? (३.३३)

यह ठीक है कि हम अपनी प्रकृति का दसन नहीं कर सकते; न चैतिस कर्त्ता बाह्य; किन्तु हमें अपने क्रान्तिक विकास के लिए मानवीय जीवन की विवेकान्तियों का प्रयोग करते हुए इन्द्रियों का दसन नहीं, स्वभावी होना चाहिए। इन्द्रियों के नियंत्रण होने का सर्वोत्तम तरीका है अपनी इन्द्रियों का उपयोग श्रीकृष्ण की सेवा में करना।

पूर्णता के मार्ग में दो बाधाएँ

इन्द्रियानिरनिश्चयमेघानाशेऽपश्चिमोऽवशिष्ठी।
तयाः न वसम आमच्छेत त्रैः सव्यसयायतिः। (३.३४)

प्रत्येक इन्द्रिय के मार्ग में ग्राम और द्रष्ट, मनुष्य के कर्मयान-मार्ग में द्रष्ट शालोंवाले, दो महान शान रहते हैं। इसलिए मनुष्य को राम और द्रष्ट के रूप में नहीं होना चाहिए। (३.३४)
श्रीमदभगवदगीता

राग का अर्थ है पुनः पुनः शैविक सुख अनुभव करने की कामना और आराम। द्रष्टा का अर्थ है अभिय वस्तु के प्रति विद्वेष। ज्ञान की प्राप्ति और द्रष्टा आदि तथा सन्नाट्य क्रियाकलाप का आधार नन की शान्ति और सुख की खोज ही है। कामना — प्रभु द्वारा प्रदत्त अन्य शक्तियों की प्राप्ति —समस्या नहीं है। नन की
जनित दशा में, राग-द्रष्टा पर नियम रखते हुए कामनाएँ की जा सकती हैं। यदि हम अपनी कामनाओं पर नियंत्रण रख सकते हैं, तो जो भी हमारे पास है, वह आवश्यकता के दौरान ऐसे हो जाता है। इस दुर्गतिकरण के साथ हम अपनी सही राखियों और अभिभावकों के स्वागत हो सकते हैं। इसके लिए अनुभव है कि वह कामनाओं, जो हर वस्तु को ऐसा का रूप दे दे। ज्ञान, अनुभव और विविधताओं को किंतु सानार की पद्धति, व्यक्ति या कर्म के प्रति न रूचि होती है, न अर्थातः।

व्यक्ति को निजी रुचियों और अनुभवों का ध्यान रखे बिना कर्त्तव्यभावना से कर्म करना चाहिए। इस युग में कर्मयोग ही वह तपस्या है, जिसके द्वारा व्यक्ति हिन्दू युग के वनों या पवित्र मैदानों में गए
बिना समाज ने रहते ही कर्म करते हुए भगवान् तक पहुँच सकता है।

प्रभु के लिए किया गया कर्म सत्य के लिए लाभदायक है, जैसे ही जैसे एक-एक पत्थर को जल देने की अभिश्व पेढ़ की जड़ को
सीबने से पेढ़ के हर नाग को पानी मिल जाता है। ज्ञान और देरावर
पार हो सुप्रीमों की सब रुचियों और अवस्थाओं का विनाश हो जाता है। यूनान के नामों में अन्य गृहीत अनुभवों और अवस्थाओं के दुख
बढ़ाए हैं। राग-द्रष्टा पर विवेचन करते हुए अनुभव मुक्ति प्राप्त हो जाता है और मोक्ष पा लेता है।

श्रेयानुसार व्यक्ति: परमार्थानुसार स्वरूपानुसार स्वरूपानुसार।

स्वरूपानुसार श्रेयानुसार या स्वरूपानुसार कार्य आत्मविकास के लिए इसके अवकाश अत्यावश्यक कार्य के श्रेयस्तर है। स्वरूप के कार्य में परशु भी कर्मनिर्माता है। अत्यावश्यक कार्य हानिकारक होता है। (१८.४५ भी देखें) (३.२५)
अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी

अपने स्वभाव द्वारा नियत कर्त्त्व का पालन-कर्त्त्व करनेवालों से मुक्त रहता है और धीरे-धीरे भौतिक प्रकृति के विकासात्मक संसार से अपर वउ जाता है (श्रीपु: ४.१९.६२). अपने स्वभाव या संस्कृत-जन्तु कर्म से ही व्यक्ति का विकास होता है। जो उस काम में हाथ ज़ालता है जिसके लिए वह बना नहीं है, उसे अवसर ही असफलता मिलती है। स्वभाविक कर्म तनाव पैदा नहीं करता और रचनात्मक विकास का स्रोत है। अपने स्वभाव के विकारित कर्म ने नेधरत तनावपूर्ण होता है, लेकिन फलदायक भी नहीं होता और उसमें आध्यात्मिक विकास और उत्तर्दि के लिए भी मुक्त समय नहीं मिलता। दूसरी ओर, यदि कोई अति सहज या कलात्मक जीवन का अनुसरण करता है, तो हो सकता है वह गृहस्थ की मूल आयुष्यकालों की पूर्ति के लिए यथेष्ट कमा भी न सके। अतः साध जीवन निजी, आन्यात्मक ऐतिहासिक-सामाजिक को सीमित करने और निष्पादन सेवा की अनिश्चित एवं आध्यात्मिक आयुष्यकालों में संतुलन रख सके। संतुलित जीवन ही सुबही जीवन है।

काम पाप का मूल है

अर्जन उपाये—
अथ केन प्रमुन्नात्मक पाप प्रचलित पुनः।
अन्नुक्तम् अंपि प्राण्वित बलादु हयम नियोजितः।।३६।।
अर्जन ओघे— है कुर्मण, न चाहते है भी बलपुर्वक बाध्य किये हुए के समान किये प्रेषित होकर मनुष्य पाप का आचरण करता है?

(३.३६)

श्रीगंगानाथ—
काम एष क्रोध एष रजोगुणाशुद्धं।
महादानो महापापमा विद्धवतामुषु हृद्यरितम्।।३७।।
श्रीगंगानाथ ओघे— रजोगुण से उत्पन्न वह काम है, यहीं क्रोध है, किंतु भी बुद्धि नहीं होती। इस महापापी काम को ही तप (आध्यात्मिक गर्भ का) झाला जाना। (३.३७)
रजोगुण वासित फूटों की प्रभा के लिए घोरस्वर्म की ओर प्रेणित करनेवाला मनोकामना है। काम — समस्त ऐतिहासिक
धर्मचतुर्भुजः

और गौतिक सुखों की गहन कामना — रजस्वला से पैदा होता है।
अतुत काम क्रोध को जन्म देता है। फल-फलपत्रिणे में गहन या वैधानिक
होने से पाप-प्राप्ति की गहन कामना सयास्क्रोध में बदल जाती है।
अतिर भवानी कहते हैं कि।

# श्रीमद्महाभारतम्

यमनाथन्योपविनिर्य यथादि भलेनन् ।
यथोऽवन्या वर्गानु तत्तथैव आवृत्तम् ॥१२॥

जैसे प्रभु से अभिनी और धृति से वर्णन तन जाता है तथा ज्ञेय से गर्भ
वाचन रहता है, जैसे ही काम आत्मान तन को तंत्रा देता है। (३.२८)

आवृत्तम ज्ञानम् एलन्द्धानिनो निक्षिप्तेण ।
कामसूलान्यो कोन्येव दुष्टरुपमण्यं च ॥१२॥

हे कौन्येव (अज्ञेय), अभिनी के सम्यन कभी तन न होता है, ज्ञानिनी के
प्रस्तावात्मान ज्ञान यदु, काम, के द्वारा ज्ञान तन जाता है। (३.२९)

काम प्रभु भ्रक्षानु एक दुल्हारे के शाक्ति शारू है, काम
का विपश्य भ्रक्षानु से ही हो सकता है।

इन्द्रियाणि मनो वृद्धिः अप्याभिषेकान्तु च ।
एते विद्वदन्ती एष ज्ञानम् आज्ञेयं देशनम् ॥१९॥

इन्द्रियाणि मनो वृद्धिः काम के विवाह-स्थान के तन जाते है। यह
काम इन्द्रियाणि मनो वृद्धिकष्टम को अपम यदा में करके ज्ञान को
वेकर मनुष्य को भंग देता है। (३.२६)

काम पर विद्य जैसे पाएं

तत्समान त्यं इन्द्रियाणि नियमस्य भतत्त्वम ।
पापमनी प्रजाह्नर्यान्तर्भाविश्वाहास्तम् ॥१२॥
अन्तर्द्वारी गीता सोसायटी

इसलिए हे अर्जून, तुम पहले अपनी इन्द्रियों को वदा में करके, ज्ञान और विवेक के नालक इस पापी कामहम्मी शानु का विनाश करो।

(कृत.उ. ६.२४, भृगु-उ. ६.०४.०७)

मर्या पुर्या कामपाश से मुक्त होने पर अन्तर हो जाता है और इतना जन्म में मोह ना लेता है (कृत.उ. ६.२४, भृगु-उ. ६.०४.०७)

इन्द्रियाणि पराण्याहुरूः इन्द्रियेष्यशः परमः।

मनसस तु परं बुद्धिः यो बुद्धकः परस्त्रस्तु स।।२२॥

इन्द्रियां शरीर से श्रेष्ठ कहो जाती हैं, इन्द्रियों से परम भोग और मन से परं बुद्धि है और आत्मा बुद्धि से भी अत्यन्त श्रेष्ठ है। (कृत.उ. ३.०५ तथा गीता ६.०५-०८ मी देख।) (३.२६)

इन्द्रियों से मन, मन से बुद्धि, बुद्धि से ज्ञान और ज्ञान से आत्मा श्रेष्ठ है (म.भ. २२.२०४.२०४.

एवं बुधुकः परं बुधुश्च संस्कृतमहानः आत्माः।

जिन शानु महावाहो कामपायुराणस्य दुरात्माः।।२३॥

इस प्रकार आत्मा को मन और बुद्धि से श्रेष्ठ जानकर, (सोया, व्या, बृजन आदि से कोई हुई गुड़बारी बुद्धि द्वारा मन को वदा में करके, हे महावाहो, तुम इस ज्ञान शानु का विनाश करो।

(कृत.उ. ३.०५-०६ मी देख।) (३.२६)

अनियमिता सांसारिक कामपायुराण जीवन की सुन्दर आन्याविश्व यज्ञ का नाद कर देंगी। धर्मप्रद्वं यज्ञ में उत्तर हुई कामान्नों को समुचित नियमित्रण में रखने का मार्ग और सामान प्रदान करते हैं। शीर्ष की तुलना एक रथ से इन्द्र जाती है, जिसमें वाद्री-सुवा-नोक्ता रथपर जीवात्मा मनयान कुण्या के रथवधाम की और जीवात्मिक माहा का रहा है। कर्तव्य और यत्न उस रथ के दो पहिये और नंगल उसका दुरा है। सेवा उसका मार्ग है और देवीपुरुष गोरे के पथर। धर्मप्रद्वं अज्ञान के अंधेरों को दूर करने के लिए गोरे ज्ञान विद्वान हैं। मन और पंचात्मिक इस रथ के घोड़े हैं। ऐतिहासिक प्राग-पूर्व मार्गश्री पर उगे हरित दृष्टि है, रागद्रष्टा मार्ग के रोड़े हैं तथा काम, धीरों और लोग लुटवा हैं। नित्रा और सम्पन्न मार्ग में अस्माती रूप से मिले सहयोगी हैं। बुद्धि इस रथ का सारणी है, बल्कि बुद्धिरुपी सारणी को ज्ञान और इच्छाशक्ति से पवित्र और
श्रीमद्भगवद्गीता

शाक्तिशाली नहीं बनाया गया, तो बुद्धिम मन को निरंतर न कर सकेगी और ऐन्द्रिय तथा शीतल सुखों की सत्संग कामनाएँ मन को अपने नियंत्रण में कर लेगी. मन और इन्द्रिय दुर्वित साधी, बुद्धि, पर आक्रमण कर उसी अपने नियंत्रण में कर लेगी और मुक्तिगर्भ से भटकाते वे जीविता सूक्ष्म यात्री को आयाम में गर्व में बदले देगे.

यदि बुद्धि मनीभाव निरंतर प्रकट नहीं है और आल्म तथा विशेष वार्षिक अभियंता तथा अर्थ अभियंता और अर्थ जीवन में जीवन को आक्रमण कर उसी अपने नियंत्रण में कर लेगी. सरीज को दस्ता लगाने पूरी तरह अपने बाथ में रखने को चिह्नित कर नहीं तो इन्द्रियों के अर्थ रूप को भ्रमण के गर्व में ले जाएगा. अर्थात् गोपराक दुर्वित जीव दृष्टि की दृष्टि अवसर असामान्य के कारण होती है, यदी तरह एक बात की आवश्यकता नहीं व्यक्ति को मान गर्ने से चिह्नित कर सकता है, तो अर्थात् उम्मीद के अर्थ अभियंता तट पर पहुँचने के लिए व्यक्ति को गर्व रूपी नहीं को पार करने के हेतु - ध्यान और रूपस्थिति को व्यक्ति ने न कर सकने वाले व्यक्ति सामिल के गर्व में, आल्म ने, तो नहीं या सकता.

अनुप्रस्त अनुकूल इन्द्रिय सुधारों से व्यक्ति स्वप्नों को विन्यास न तक. इन्द्रियों को व्यक्ति से कर सकता जीवन सारे विषय को जीवन में कर सकता है और सामस्य विषय में सक्षमता या सक्षमता है. गोपराकों का पूर्व में निरस्तरकारण तो समय नहीं है, किंतु वे जीवन द्वारा नियंत्रण में रखा जा सकता है. जब दशक वर्तमान में वातावरण नहीं का स्थिर भंडार भी बनाता है, तो तरह दुर्विताय में बुद्धि भी दृष्टि हो जाती है. अनुकूल सामय और जीवन के उच्च ध्यान का निर्धारण मन और बुद्धि को ऐन्द्रिय सुधार के भटकाव से प्रभावित होने से बचाया है.

37 तत्सारतृत श्रीमद्भगवद्गीतानामासुपिनिफलु प्रशब्दिकायोंयोगावलये श्रीकृष्णांज्ञानांसंगदिक्यं कर्मयोगो नाम तत्त्वावध्ययनम्

इस प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुन के संबंध में इस भाषा तथा योगसहायता विषय का श्रीमद्रघीतासाधु अनुप्रस्त योग अनुभव होता है.
अन्तर्द्रोह गीता सोसायटी

अथ सत्तमोऽध्यायः
झानविज्ञानयोगः
७. झानविज्ञानयोग

धीमययोगात्
मन्त्र आसारामः पार्थ योगं पुनः मदाव्रः
अष्टादश संस्कर्मः यथा ज्ञात्व सि ततः पुणः ॥२४॥

धीमययोगः बोलो— हे पार्थं, अनयां प्रश्नसः युक्तं आसाराम सन्नयः,
मेरे आदि सृंखला अन्यां प्रश्नसः से योगः का अप्सर्स से हुए
तुम पुंजे पूर्ण रूपं निष्कन्तः कैसे जान सकोऽग, उसे सुनोः।
(२.०१)

झान तेंद्रं सविज्ञानम् इदं यक्षायम् अंधकारः ॥
जन्य ज्ञात्यदेह पुष्योऽनुजः झातयत्यस्माते इर।

मैं तुम्हें ब्रह्म-अनुभूतिः (ज्ञानं) सहित ब्रह्मविधा (झानं) प्रदत्तम् कर्मम्,
जिसे जानकर संसारं में फेर और कुट्ठा भी ज्ञानम में शप
नहीं रहे जाता है: (भु.उ. १.०१.०३ भी देखिए) (२.०२)

वे, जो परब्रह्म को जान लेते हैं, पूर्णता पा लेते हैं (अ.०४.
१६४:३६). जब परब्रह्म का श्रवण, मनं, दर्शनं, चिन्तनं और झानं
हो जाता है, तब सब कुछ जान सिद्ध जाता है। व्यक्ति सत्संसरं हो
जाता है (भु.०.४.६०). ब्रह्मविधा की उष्ण के आगमन के साथ
अन्य सब चीजों के झानं की आवश्यकता अपराधित क हो जाती है।
जोसे स्वर्ग के झानं के बाद स्वर्ग से निर्द्ध पदवधं जान लिए
जाते हैं, उसी प्रकार परब्रह्म को जानने से परब्रह्म की सब
अभियोगितियों का झान हो जाता है। परब्रह्म और धर पूर्ण दोनों को
पूर्णतं समझने के लिए ब्रह्म का समझना अवश्य करना है।
योगी

ब्रह्ममें तत्त्वं वास्तवत्वं कालित्वं यथास्वरूपतः
यतनास्मात् अपि सिद्धानां कर्षिणम् भवते तत्त्वं। (२.०१)
हजारो मनुष्यों में कोई एक मेरी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है और उस प्रयत्न करनेवाले सिद्ध क्षेत्रों में भी कोई एक मुझे पूर्ण रूप से जान पाता है। (३.०२)।

इसलिए तो बहुत जाते हैं, पर चुने शोधकर्ता ही जाते हैं (मैत्रेयु २२.१४). परशुराम भगवान श्रीकृष्ण का ज्ञान और भक्ति पा लेनेवाले भाग्यवान शोधकर्ता ही हैं।

प्रकृति, पुरुष, और आत्मा की परिभाषा

भौमिरुपां आरोधनालो याप। खं मो वृद्धिअय एय च।

अहंकार इतिवं में मिथ्या प्रकृतिर अद्यथ।।

मेरी प्रकृति पृथ्वी, जन, अमित, याप, आकाश, मन, वृद्धि और अहंकार तत्व आठ प्रकार से विभाजित है। (१२.०५) भी देख। (३.०४)

'प्रकृति' शब्द से अभिप्रय तो अभिक गूढ़ कारण, वह पदार्थ जिससे सब चीजों का निर्माण होता है। प्रकृति अभिक कंडक का मुख्य द्रोह है, जो सांस्कृतिक प्रत्येक के अनुसार चन दीन गुणों और आद मुख की बनी है और जिनसे विवेक के सब वस्तुओं का विकास हुआ है। सम्पूर्ण विश्व के निर्माण का अभिक गूढ़ कारण प्रेम तत्व के अनुसार माया है और सांस्कृतिक अनुसार प्रकृति। प्रकृति को असतु, क्षर, तत्व, निर्यात, अभिक प्रकृति, महाकाल, क्षेत्र, कृति, व्यक्ति आदि भी कहा गया है। वह, जो विविधता का निर्माण करती है और सत्य के विविध रूपों में अमान्यता होती है तथा वह सब जो देखा या कार्य जा रहा है, प्रकृति कहलाती है।

अपरेयाम् इतस्त भू अन्यां प्रकृतिर विविधिः में पराम।

जीवमुन्ता महाराहो यथेव धार्याहं ज्ञात।।

हे महाराहो, उपरोक्त प्रकृति मेरो अपरा शक्ति है। इससे मित्र मेरे एक दूसरे परा चेतन शक्ति (अर्थात 'पुरुष') है, जिसके द्वारा यह ज्ञात धारण किया जाता है। (५.०४)

श्लोक ५.०५ और ५.०६ में प्रकृति के दो प्रकारो का वर्णन है। श्लोक ५.०७ में वर्णित अष्टांग प्रकृति को अपरा शक्ति या ज्ञात प्रकृति कहा गया है। यही सामान्यता प्रकृति जानी जाती है। अभिक
अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी

विश्व का यही निर्माण करती हैं। रेखयूग 9.05 में वर्णित दूसरी प्रकृति
को परा शास्त्र, भेतन प्रकृति, भेतना, बोध, आत्मा, अकार पुरुष आदि
भी कहा गया है। यही सामान्यतः पुरुष कहा जाता है। पुरुष
अपरिवर्तनीय, अधिकारी है। जबकि पुरुष से उत्तर प्रकृति
परिवर्तनशील है, विकारी है। पुरुष प्रकृति का निरीक्षण करता है,
साही है और निदेशक भी।

पुरुष विश्व की सृष्टि का निर्मित-कारण है। प्रकृति और
puruṣ की दो स्वतंत्र सताए नहीं है, वरन् एक ही प्रभा के दो स्वरूप
है। प्रभा, पुरुष तथा प्रकृति एक ही है और निष्ठा भी है, जिस प्रकार
सूर्य, उसका प्रकाश तथा कुमा एक होते ही भी भय है।

जल और जल से उत्पन्न तथा जल से पोषित मछली एक
ही नहीं हैं, तैले ही पुरुष और पुरुष से उत्तर प्रकृति नी एक नहीं है।
(प्रभा 12.394.96)। जब पुरुष प्रकृति के दुष्प्रयोग से नोगता है,
तब वह जीव कहलाता है। आत्मा और जीव
भी निष्ठा है, क्योंकि आत्मा जीव का पोषण करती है,
लेकिन जानी जोग उन दोनों में कोई अलग नहीं देखते
(प्रभा 4.394.96).

प्रभा, प्रभा, आत्मा, पुरुष, प्रकृति आदि कुछ शब्दों
की परिभाषा विभिन्न सिद्धान्त-शास्त्रों में विभिन्न-भिन्न की गई है
और संदर्भों
के अनुसार उनके अर्थ भी भिन्न होते हैं। प्रभुत विवरण में सम्बन्ध-निर्णय
'वर्धन' (God) शब्द से अभिप्रय से विश्व का एकमात्र
प्रभु, जिसे हम व्यक्तित्व नाम 'भीकृता' से पुकारता पसन्द करते
है। आध्यात्मिक पाठक के पथ पर अप्रमाण पाठक के
लिए विभिन्न पारिपालक शब्द प्रभु पैदा कर सकते हैं; अतः इन विभिन्न
अथवायुक्तों का सम्पूर्ण अर्थ, प्रयोग और ज्ञानक सम्बन्ध
किसी की
सहायता से जानना चाहिए।

एतत्योनानि भूतानि सर्वाणि युपाधार्य।
अह कृत्यन्त्यजयजनः प्रभव: प्रतिपर्य स्ता ।.6.1.

तूम ऐसा समझा कि इन दोनों विभिन्तों प्रकृति और पुरुष
के संयोग से ही समस्या प्राणी उभर होते हैं, तथा तथा,
पशुपति परमात्मा,
हो सम्पूर्ण ज्ञान की उपलब्धि और प्रतिपर्य का ब्रोत हूँ। (१.२६ भी
देखें। (६.०६)
परमात्मा सब कस्तुओं का आपार
मन्त्र परतरं नात्तं किंविदु अति धन्यजय
धन्य सर्वम् हि प्रोतं सुतं मणिगणा हिuko

हे धन्यजय, मूढ़से श्रेष्ठ कृपा भी नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत मुझ परशु भागा परमात्माधिकी सृत में (हार की) मणियों को तद्विस्तर हुआ है। (9.03)

गी, अहिष्ठ, मानव, पशु तथा कुत्ते सभी सदृश प्राणियों में बही एक आला विधान है, वैसे ही पृथ्वी गृह, होरे, लोहे, गोली या काँठ से निर्मित माला में बही सूत्र (भ.भा. १२.२०६.०२-४३). यह सभी सुचित प्रथु से व्याप्त है (भज्ञ. ३२.००).

रसोदमृत्त अपना कौटेय प्रमाधान शाश्वतयोः।
प्राणेऽस्वप्नेऽपि शाय; ख्यो पौरुष: गृहः। १४॥
पृथ्विर्य गत्वा वृद्धि च तेजशाहिस्मिविभावसोः।
जीवनं सर्वभूतेऽस्मि तत्पुरुष चाशुस्मिति। १५॥

हे अर्जुन, मे जल में स्वर है, नदियों और पृथ्वी में प्रकाश है, सब बेदों में अपकार है, आकाश में शाब्दि और मनुष्यों में मनुष्यत्व है, मे पृथ्वी में पृथ्वी गम्भीर और अर्णन में तज हैं, सम्पूर्ण मूलों का जीवन और चार्यायित्यों में तत्पर है। (८.०८-०९)

वृद्धि वृद्धिभन्न विद्विद्व पार्थ स्मातमुः।
वृद्धिबंधु वृद्धिप्रभायां अस्मि तेजसु तेज्जितनमु आहम्। १५०॥
बलं बलवतं चाह्यं कामरागविविधसितमुः।
वृद्धिबंधुः सुभृतते कामोद्यतनम्विविनितम्। १५१॥

हे पार्थ, सम्पूर्ण मूलों का समानान बीज मुझों हो जानो। मे बृद्धिमयों की बृद्धिः और तेजशाहि में मानुष हैं, (१२.१८, भ.भा. २०.३९) मे अवश्य हैं। भरतप्रसिद्ध, मे आयस्त और आयस्त में रूखित बलवतों का बल है और मनुष्यों में धर्म के अनुकूल (संनान को उत्तम पत्र के लिए)
किर जानवाला समीम मुः (५.४०-४१)

ये चैव सावित्रीक भाभा राजसार्थ तमसाश्च मे।
मन्त्र एवंति दानं विविधं न तु अहं तसु ते मवि। १५२॥
अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी

जो भी सांत्विक, राजस्विक तथा नामस्त्विक गुण हैं, उन सबको तपा यहीं ही उपयुक्त है। ज्ञान। (अन) ये (गुण) मूलपर निरूप करते हैं। परन्तु यह उनके आचरण पर उनसे प्रभावित नहीं होता है। (२.०७, ५.०९ भी देखें।) (६.१२)

विनियम गुणपत्र पहेल एवं सबमु हं जगत।
मोहित नाभिज्ञानाली मामु एयुः परम अवमयम्।।१३।।

प्रकृति के हन तीनो गुणों के कार्यों से यह सारा संसार भ्रमित रहता है, अत: मनुष्य इन गुणों से पले मुझ अविनाशी परमात्मा को नहीं जानता है। (३.१२)

प्रभु की खोज किसको?

देवी द्वारा एयु गुणपत्र भम भावा दुर्व्याया।
मामु एयु ये प्रभावः मामु एयु तरंगु ते।।१४।।

मेरी इस आलोकिक निगुणपत्री माया को पार करना बड़ा ही कठिन है, परन्तु जो मनुष्य मेरी ज्ञान में आते हैं, वे इस माया को (आसानी से) पार कर जाते हैं। (१५. २६, १५.१९, १८.६६ भी देखें।) (६.१४)

न मा तुष्कृतनो मुझः प्रकृतभने नराधमाः।
मायापरहत्तामा आसुरः प्रभु आभिता।।१५।।

पाप कर्म करनेवाले, मृत्युं, आसुरो व्यभिचाराने नीच मनुष्य तथा माया के द्वारा हरे हा ज्ञानवाले मेरी शरण में नहीं आते हैं। (५.१५)

चन्द्रिकाशा भजने मा जना: सुकृतिनोर्जनम्।
आरो जिन्दारुरो अर्घ्यि जानो च परतिठम्।।१६।।

हे अर्जुन, चार प्रकार के उत्तम मनुष्य - दूर से पीड़ित, परमात्मा को जानने को इच्छावाले जिज्ञासु, धन या किसी इच्छाजन को इच्छावाले तथा ज्ञानी – मुझे भजने हैं। (तुल्य. १.२१.०२ भी देखें।) (७.१६)
श्रीमदभगवदगीता 21

लोक 7.16-19 में प्रयुक्त ज्ञानी शब्द का अर्थप्रयास उस प्रयुक्त उपक्रम तीन ज्ञान हो गया है.

उपक्रम जो भी काम करता है, वह कामना की उपज है.
जल की कामना के मिश्र में भी उपक्रम काम अति कुछ भी नहीं कर सकता (म.स.० । 2.0१). कामनाओं का सम्पूर्ण विनाश नहीं किया जा सकता, तरुण निम्न कोटि की स्वायत्तता कामनाओं का परिवर्तन कर सकते हैं। उपक्रम की कामना कामना का श्रेष्ठ उद्देश्य रूप है। समस्त मानवीय कामनाओं में श्रीकृष्ण के उपक्रम की जान है कामना उच्चतम और प्राकृतिक मानी जाती है। ऐसा कहा गया है कि प्रायोगिक भक्ति मुख्य की भी कामना नहीं करते। वे जन्म-जन्मान्तर तक श्रीकृष्ण की प्रेम-भरी सेवा की ही गान कामना करते हैं।

जो भक्त परिपूर्णता के लिए प्रमुख हो और प्रेरित होते हैं, उनकी निम्न कोटि की कामनाएँ पुनः हुए वीण के दानों की तरह ही जाती है, जो अंकुशीत होकर कामना के बड़े वृक्ष में नहीं बढ़ सकते। वास्तविक महत्त्वपूर्ण वातावरण तो यह है कि भक्ति, उपक्रम, प्रेम, धृष्टि, भक्त या नैतिक लाभ के लिए भी भगवान् कृष्ण में नन को पूर्णता ध्यानमयोग होकर लगाएं (भ.स.० । 20.22.26).

तेषाः ज्ञानी नित्यवृक्ते एकभक्तिनिर्विविधते।
प्रियोहि ज्ञानोनांत्यसम्म प्रायं स च माम प्रियं । १२॥

उन चार भक्तों में भी गृहमें निरस्त रहा हुआ अनन्य उपक्रम-वृक्त ज्ञानी श्रेष्ठ है; क्योंकि मूढ़ परमात्मा को तत्त्व से जाननेवाले ज्ञानी भक्त को में अत्यत ही प्रिय है और वह भी मूढ़ अत्यत प्रिय है। (7.17)

उदारः रर्य एवेदेऽ ज्ञानी त्यु आत्मविश्व में मनम।
आऽत्थष्ठिः स हि युक्तताम् माम्य एवानुवर्तनम् रतिम्। १४॥

उपरोक्त सभी भक्तं श्रेष्ठं हैं; परन्तु तथां समझसंगति नो साधनां में वह रूप है; क्योंकि युक्तताम् उत्तम गति को प्राण कर मंगे परमधाम में निवास करता है। (9.29 भी देखें) (7.18)
अनेक जन्मों के बाद ब्रह्मानन्द प्राप्त करते कि "यह सब कुछ कृपयागद्य है, नमस्त्रयः प्राप्त करता है; ऐसा महान्या बहुत कुर्सी है. (५.१९)

सब कुछ ब्रह्मानन्द प्राप्त ही है, ब्रह्मा से सब कुछ उपलब्ध होता है, उसी में निवास करता है और उसी में विलीन हो जाता है (३२.३०)। सब कुछ ब्रह्मा ही है, वही सर्वभूत है, यह सर्व सज्जन है (४१.०१)। बाइकल का कहना है- तुम ही देवताओं हो (ज्ञ. ५०.३२)। वेदों और उपनिषदों की उल्लिखित है- वेदान्त ब्रह्म है (प्राणान्त ब्रह्म, ज्ञानबाद, ऐत. ३००)। यह है हृदय (अहं ब्रह्मार्थि, बुद्धानुभूति, ज्ञान-भ. १००)। तुम ही ब्रह्म हो (लक्ष्मण, सातवेद, चँ. ५.०८)। आत्मा ब्रह्म है (अयमात्मा ब्रह्म, अध्यात्मं, मा. ०२)। वह जो एक है, इन सब वस्तुओं का रूप लेता है (अ.०. ८.५८)। समस्त सुनिश्चित हो और सत्य का समस्त क्रम ब्रह्म के विषय-विनियम रूप को छोड़कर कुछ भी नहीं है।

कसूरी मुगल कसूरी की सुगन्धि के क्रोध की निरंकल खोज के बाद अन्त में अपने में ही कसूरी को पाने के लिए नाम होगा, प्रशुपथ ब्रह्म के बाद ज्ञात समस्त विश्व और प्राणियों के प्रलय त में प्रमुख की ही अस्तित्व सत्य को देखता है। सब कुछ चेतना ही है। सूर्य और माया की द्रुती से चेतना के सामने में उत्सर्जन होती हुई अस्तित्व तर्कों की तरह है। सब कुछ, माया सहित, उसी रंग का अंग को छोड़कर कुछ भी नहीं है।

कामेश्वर देवस्वामी: प्रभुप्रेमस्वरूपराधिकारी।
तंत्र नियमस्वरूप नियमनार्थो नियम: स्वयं १२०६।

भोगों की कामना द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, ऐसे प्रमुख अपने स्वभाव से प्रेरित होकर नियमपूर्वक देवताओं को पूजा करते हैं (५.२०)
श्रीमदभगवदगीता  

भक्ति के किसी भी वातानूय रूप को  
पूर्ति में प्रभु का दर्शन सम्भव  

यो यो या या तनु भक्ति आद्यपारितम इष्ठति ।  
तत्स्य तत्स्याचारां श्रद्धाः नाम एव विन्दुमयृ अहम्। ॥२१॥  
स तन्य श्रद्धाया युक्तस्य तत्स्यारथमस्य इहने ।  
ताभने च ततः कामान् पथेयेव भिन्ननां हि तानृ। ॥२२॥  

जो कोई साक्षात भक्ति जिसके किसी भी देवता को आद्यपारित रूपना चाहता है, मे उस भक्ति की श्रद्धा को उसी देवता के प्रति सिध्ध कर देता हूँ। उस सिध्ध श्रद्धा से युक्त यह मनुष्य अपने उद्देश्य की पूजा करता है और उस देवता के द्वारा इच्छित भोगों को नियंत्रण प्राप्त करता है। यात्रा में ये हेलफल मे द्वारा ही होता है, (॥२१-२२)  

देवनाथों की शक्ति भी परम प्रभु से ही आती है, जिसे  
प्रकार दुरुस्ति पूल से (भा.पु. ६.०४.३४)। प्रभु ही कर्मकार का दाता है  
(भा.पु. ३.०२.३२)। प्रभु ही अपने उपासकों की सब कामनाएं पूरी  
करता है (भा.पु. ४.९३.३५)। श्रद्धा और प्रेम से उपासना निरंतर जाने  
पर प्रभु भक्त की सब निश्चित और लाभकारी कामनाएं पूरी करता है।  
ज्ञानों को अनुभवित होती है कि सब नाम और रूप उसी के हैं, जबकि  
अन्यानि दूसरों के मूल्य पर अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए धर्म के नाम  
में धर्मपूर्द्ध करते हैं।  

कहा जाता है कि व्यक्ति जिसे किसी भी देवी-देवता की  
पूजा करता है, उनको दिया हर अर्थ, उनको की गई हर उपासना,  
परशुर नामला को ही पुष्पवती है, वैसे ही, जैसे वर्ण का सारा जल  
सागर में ही पुष्पवत है। प्रभु के जिस नाम और रूप की भी भक्ति  
आवश्यक करता है, वह सब उसी परशुर की पूजा है और व्यक्ति  
श्रद्धा सहित की गई उस देवपूजा का पुरस्कार पाता है।  

अन्तत तु फलं तेषाः तद भव्यं अन्तमेतिसमासम ।  
देवानां देवयोजो यानि मद्दकस्ता यानि मामृ अयो ॥२३॥  

पर्याप्त उन अन्यविविधानेन मनुष्योऽको (नाशवान) देवताओं का  
दिया हुआ फल नाशवान होता है। देवताओं को पृजन्यावान देवलोक
अन्तराष्ट्रीय गीता सोसायटी

को प्राप्त करते हैं तथा मेरे भक्त (परमधाम में आकर) मुझे ही प्राप्त करते हैं। (७.२२)

अव्यक्त व्यक्तिम आपनी मन्यने माम्र अवृद्धिक।
परं भावम् अजनातिः ममाययम् अनुनम्तम् ।३४॥
अजानी मनुष्य मुंडा परश्रम परमामा के नन्, वृद्धि तथा वातावरण से परे, परम अविनाशी विद्या रूप को नहीं जानने और समझने के कारण ऐसा मान लेते हैं कि मैं विद्या रूपवाला निराकार हं तथा रूप धारण करता हूँ। (७.२४)

श्रीक द.२४, २.२८, ६.५८, ६.२०, ६.२१, ६.०४, १२.०३, १२.०५ और १२.०६ में 'अवृद्धि' शब्द का प्रयोग हुआ है। तांत्रिक के अनुसार इस शब्द के भी निर्भय-द्वद अर्थ होते हैं। यह आदि प्रकृति के अर्थ ने भी प्रयुक्त हुआ है और ब्रह्म के अर्थ में भी। परश्रम आदि प्रकृति और ब्रह्म दोनों से ऊपर है। 'अवृद्धि' शब्द का अर्थ आकाशीन नहीं है। ऐसका अर्थ अप्रकट या लोकोत्तर अनुस्माराती रूप है, जो शारीरिक चचुएँ के लिए अनुसार, मन की समस्या से परे और शब्दों के लिए अवृद्धि है। समी वस्तुओं के रूप हैं। सूचि में कुछ नहीं, परश्रम-सहित, अवृद्धि नहीं है। समी रूप उसके ही रूप हैं। परश्रम का रूप और व्यक्तिव दिशा है। वह शास्त्र, अन्नों और अन्न है। अनुसार परम सत्ता ही दृष्ट जगत् का आधार है।

इस श्रीक का अर्थ सर्वधामन विश्वास का खंडन करता-सा प्रतीत होता है कि प्रमु, जैसा कि श्रीक ४.०५-०६ और ६.०४ में कहा गया है, अवृद्धि लेते हैं। श्रीक ६.२४ में यह कहा गया है कि परश्रम सत्ता अवृद्धि है और इसलिए करी प्रकटरूप नहीं होते। सभी अर्थ में परश्रम अवस्थान नहीं होते। वे कभी भी परमायन के बाहर नहीं जाते। यह तो ब्रह्म की ज्ञानस्थिति है, जो सूचि, पोषण, विनाश और अविनाश का काम अपनी असंख्य शक्तियों द्वारा करती रहती है।

प्रमु का शास्त्र दिशा रूप मनुष्य के नन और बृद्धि द्वारा चेत आकृति या अनुवाद से परे है। समात-चुनियों द्वारा अनुसार, सार्वजनिक और अवृद्धि प्रमु का वर्णन सामाय भक्तों के मनों में प्रमु का पार पैदा करने के लिए किया गया है, जो अवृद्धि-पूजन के लिए निमाता आवश्यक है। प्रमु भक्त के सामने किसी साकार रूप में
स्वस्तीको आर्थ्थ को सुदृढ़ करने के लिए प्रकट होते हैं। अतः व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह युग के सब रूपों का आदर करे, पर किसी एक रूप के साथ सम्बन्ध स्थापित करके केवल उसी की पूर्णता करे।

नान प्रकाश सर्वविषय योगमूर्तिसमाप्ति।
पूर्वस्तं नामितानि लोकोऽ माय अजम अय्यम्।

जो मुद मनुष्य मुद परशुरघुरण के जनमहिन्द, अविभाजित, विभिन्न रूप को अन्वयी तत्त्व नहीं जान तथा सम्बन्ध पाते हैं, उन सबके सामने अपनी योगमूर्ति से विषय हुआ में कभी प्रकट नहीं होता है।

(6.26)

वेताह संपत्तिनानि वर्त्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूततिः मां तु येद न कर्शन।

ह अर्जुन, मैं भूत, वर्त्तमान और भविष्य के सब प्राणियों को जानता हूँ, परन्तु मुझे कोई नहीं जानता। (6.26)

इच्छाद्रेष्टामुनिस्वेतु क्रृष्णोऽभारत।
सर्वभूतानि समाहं सर्वं यान्ति परतप।

येषां त्वथ अन्तगतं पापं जनानां पृथ्वीकर्मणाम।
ते क्रृष्णोऽहित्निमुखता भजने मां हृदात्मा।

ह अर्जुन, राग और धर्म से उदार (सुख-कृत्य) इच्छाद्रेष्टा तथा भविष्य सभी प्राणी अन्तगत अज्ञात को प्राप्त होते हैं; परन्तु निष्काम भाव से अन्य कर्म करनेवाले जिन मनुष्यों के सारे पाप नष्ट हो गए हैं, वे राग-धर्म-ज्ञातं धर्म से पुकार होकर इच्छाद्रेष्टे कर मेरो भक्ति करते हैं। (6.26-28)

जगामरणोऽभ्राम माय आङ्गित्य यतनिः।
ते गुणे तद्विकृतस्मृतं अध्यात्म कर्म चालितम्।

जो मेरे जगामरण होकर सर्व और मुद से उदार पाने के लिए प्रयत्न करते हैं, वे उस परशुरघु रूप से, सम्बन्ध अध्यात्म को नट-सार कर्म को पूर्ण रूप से जान जाते हैं। (6.29)
अन्तर्ग्रंथीय गीता सोसायटी

साधितताधित्यों मां साधितयां च ये विदुः।
प्रयाणकलेवर्यो मां ते विद्वर युक्तन्तसः।।80।।
जो युक्तचिन्तावलें मनुष्य अन्त सम्यं मं भी मुझे हि अधिपत्न,
अधिवेद और अधियज रूप से जानतेन हैं, वे पुझको हि प्राण होतेः।
(8.04 मी देखः) (8.30)

२८ तत्तत्त्वञाय श्रीमत्यमन्त्रशास्त्रं श्रीमत्यमन्त्रसंग्रहं पुस्तकाम्
श्रीमत्यमन्त्रसंग्रहं पुस्तकाम् पुस्तकाम्।
इस प्रकार श्रीमत्य और असुमान के संवाद में श्रीमत्यमन्त्र और पुस्तकाम्
विषयक श्रीमत्यमन्त्रसंग्रहं पुस्तकाम् पुस्तकाम्।
श्रीमत्य और पुस्तकाम् पुस्तकाम् पुस्तकाम्।
श्रीमदभगवदगीता

अथ पञ्चदशोऽध्यायाः
पुरुषोत्तमेऽवः
१५. पुरुषोत्तमेऽवः

सृष्टि माया की सहिति से उत्पन्न वृक्ष के समान

श्रीभगवान्वाच—
उद्भूतमाये अवश्वकमुः अश्वस्थप्राहुर अभ्ययमा।
उद्भूतसि अस्य प्राणायां यस्तु संदेश संदेशित ॥१५॥

श्रीभगवान्वो च— इस संसार का एक समान सीमान का वृक्ष कहा गया है, जिसका खोल (पूता) परमपत्म है, अनल भ्रामण जिसकी शाखाएँ है तथा वेदमं जिसके पत्ते हैं। इस संसराङियों वृक्ष को जग मनुष्य पूता सहिति तत्त्व से) जान लेता है, वही वेदो का जाननेवाला है। (गोविता २०.०८ तथा कुटुम्ब. ६.०१, भा.भ. ११.२१.२०-२ भी देखें) ॥१५.०१॥

अघरचोर्यं प्रभुप्रसादम् तत्स्य शाखा
गुणप्रबुद्धत्वं विपयवानाः।
अघरच भूलान्यं अनुसंतनात्यि
कर्मानुवृत्त्यो निश्चराणाः।॥१५॥

इस वृक्ष की शाखाओं सबीं और फैली हुई हैं, प्रकृति के गुणपूर्ण जल से इसकी वुद्धि होती है, विपयवान इसको कोपल हैं; इस वृक्ष की (अक्षरां और इण्डरावी) जिंह पृथ्वीराक में कर्मबन्ध वनकर व्याप है। (१५.०२.)

मानव शरीर — शून्य भ्रामण अर्थात विश्व — की तुलना
एक आदि और अन्तरहित बृक्ष से नी की जो सकती है, कर्म उसका
बीज है और अन्तर बाहर उसकी जड़ है। पाँच मौलिक तत्त
प्रमुख शाखाएँ है तथा ज्ञान और कर्म की दो इण्ड्रियाँ उसकी
उपशाखाएँ हैं। मौलिक प्रकृति के तीन गुण प्रभुप्रसाद प्रदान करते हैं
और एन्ड्रिक तुष उसके अंकुल है। यह वृक्ष सतत रूप से परिवर्तित
होता रहता है, किंतु शास्त्र अनादि और अनन्त है, जैसे पत्तियाँ
वृक्ष की रक्षा करती है, वैसे ही मौलिक कर्मकांड इसकी रक्षा करता है।
मोह-वृक्ष को काटने और प्रभु-शरण से मोह-प्राप्ति कैसे?

न रूपम अस्येह न तसोपलम्यते
नानो न चांदर न च संप्रक्षिष्टा ।
अस्यत्रभुम एवं सुविद्धमक्षमः
अस्तुःसारशक्षण हृदन चित्वा ॥१३॥

ततः पद्ध तत्व परिमाणितवधः
पुरस्थिनि गता न निवर्तनिः भूयः ।
तमू एव चांद्र पुरवं प्रपथे
यत्र प्रवृत्तिः प्रसुता पुराणी ॥१४॥

इस मायावद्यं संसार-वृक्षं के रूपम्, आदि तथा अन्न का पता नहीं है। (इसलिए) मनुष्य इसको (आहार और इच्छाकरी) जाड़ा को धारन और देशस्वप्नों शरण द्वारा काटकर ऐसा संपन्न हुा — कि मैं उस परम पुरुष को शरण में हूँ, जिससे वे सारी सनातन विभूतियों व्यक्ति हैं — उस परमात्मा की योजना करें, जिसे प्राप्तकर मनुष्य पुनः इस संसार में ब्रम्हो में भांगा। (१४.०२-०४)

सृष्टि आवश्यक है — आदि-अन्न-हृदम्। सत्ता रूप से यह परिवर्तित होती रहती है और इसका कोई स्वायत्त अभिलाष या वास्तविक आकार नहीं है। आध्यात्मिक साधना की शिला पर व्यक्ति को अपने लक्ष्य और अनासाध्य के कुछ हड़े को पैना कर जीवन का
और परमात्मा के बीच की भिन्नता की अनूठति को काट जाता बाहिर तथा हर्ष और होकर की विचारती ग्रांथियों से बने जीवन-गार्ड में प्रति पूर्वक भाग लेते हुए इस संसार में अहंकार और वासना से पूर्णतः मुक्त होकर रहना चाहिए.

निमानपोष निमानपोष
अध्यात्मिन्य चित्तरकामः ।
नेक्ष्य विषुक्तः सुखु-खरस्तींर ।
गच्छन्य अपुः पदम अवयं ततः ॥१॥

जो मान और मोह आदि से निवृत हो चुके हैं, जिन्होंने आसक्ति-पी दोष को जीत लिया है, जो परमात्मा के स्वरूप में निन्दा विध्यवा और जिनको कामनाएं पूर्णित हो समापन हो चुकी है तथा जो सुख-कुश मानक इन्हों से विरुद्ध हो गए हैं — ऐसे ज्ञानी जन उस अविनाशी परमात्मा को प्राप्त करते हैं. (१५.०५)

न तद्भावयने सुर्योऽन शाश्वानकों न पावकः ।
यदु दक्षा न निवरतेऽन तद्व धाम परं गम ॥१६॥

उस स्वरूपकारित परमात्मा को न सुर्य प्रकाशन कर सकता है, न चन्द्रन और न अन्नी हो। यदी मेरा परमात्मा है, तो उस प्राप्त कर मनुष्य इस संसार में पुनर्जन्म नहीं लेते. (गोर्गा १३.१७, १५.१५ तथा कद.३.५.१४, वद.३.६.१२, मु.२.१२.१० मि. देखें.) (१५.०६)

परमात्मा स्वरूपप्राप्तित है, किसी अन्य शक्ति से प्राप्तित नहीं। वह सूर्य-चन्द्र या प्रकाश होता है, जैसे ही जैसे प्राप्तित दोष अन्य पदार्थों को (दवी.भ. ४.३२.१९). परमात्मा सृष्टि के समय असिल में आए सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि से पहले विधान मे तथा महावर्त कल में सब वस्तुओं के विद्युत प्रकृति में विराम होने के बाद भी विधान होगा.

जीवनन्य भोक्ता है
मनोगृंडो जीवनोके जीवभूत सनातनः ।
मनवर्द्धनानन्दिनयों प्रकृतिस्वयानि कर्थि ॥१७॥
अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी

जीवनोक में सनातन जोड़भून, अर्थात् जीवनात्मा, मेरी ही शक्ति का एक अंश है, जो प्रकृति में स्थित मन सहित छ। इन्द्रियों को चेतना प्रदान करता है। (१५.०५)

मूलतः आत्मा ही ब्रह्म कहीं जाती है। आत्मा ही परब्रह्म की सच्ची प्रकृति है। अतः आत्मा (ब्रह्म) को परब्रह्म का अभिन्न अंग भी कहा जाता है। इसी को व्यक्तिगत आत्मा, जीव या प्राणियों के शरीर में (विध्वंसन) जीवनात्मा भी कहा जाता है। आत्मा और व्यक्तिगत आत्मा के बीच का अंतर सीमित करती अनुबंधताओं – शरीर और मन – के कारण (दीवरण) है, वैसे ही जैसे यह प्रम (होता है) कि बन्द पत्ता का आकाश असीमित आकाश से अलग है।

दारींदर यद्य अवपनाति यथो चाप्य उक्कामनेर्ग्रः।

गृहीतेनानि संगायति वायुर्गन्धुन इवासयान्।

जैसे हवा पूर्ण ही गन्ध को निकालकर एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाती है, जैसे ही जीवनात्मा मृत्यु के बाद छ। इन्द्रियों को एक शरीर से दूसरे शरीर में ले जाता है। (२५.१३ भी देखें) (१५.०७)

यह जीवनात्मा सूक्ष्म शरीर – अर्थात् अनुसूची की छ। ऐनियं शक्तियों को एक स्थूल नीतिक शरीर से दूसरे तक मृत्यु के बाद वैसे ही हो जाती है, जैसे वायु पूर्ण को एक स्थान से दूसरे स्थान तक। वायु पूर्ण के संसर्ग से न प्रभावित होती है, न अप्रभावित।

इसी क्रान्ति जीवनात्मा भी शरीर के भागों से न प्रभावित होती है, न अप्रभावित (सं. २०.५९९.३१-३६)। नीतिक शरीर देश-काल की सीमाओं में सीमित है, किन्तु अनुसूची सूक्ष्म शरीर असीमित है।

सन्यासी है। सूक्ष्म शरीर न्यायत्त के अवधि-अवधर्म को अपने जन्म तक ले जाते हैं, जब तक कि समस्त कार्य समाप्त नहीं हो जाता।

जब वासनाओं एवं कामाओं का सारा बिंदु अलस-बोध की उपस्थिति मिल जाता है, तब नीतिक शरीर का असंतोष नाना और नहीं रहता है और महिमाकांश में सूक्ष्म शरीर का भाव पूर्ण हो जाता है। सूक्ष्म शरीर नीतिक शरीर की ही भूमि प्रतिलिपि है। सूक्ष्म संसार के जीव कला, तकनीकी और संस्कृति में अविश्वसनीय है। वे नीतिक संसार को विकसित और अभिव्यक्ति करने के लिए नीतिक शरीरों को धारण करते हैं।

स्वामी हरिहरानन्द गिरि कहते हैं: न्यायत्त प्रमु के
श्रीमद्भगवदगीता

दर्शन या उसकी अनुप्रति और प्राप्ति नहीं कर सकता, यदि वह अंतर्गत गौरव शरीर की खोज नहीं करता।

जाप्रत् अवस्था ने नृतिक शरीर, गर्वक, कुदिश और अहमु रसिक-रहते हैं। स्वनार्थात्मा में जीवात्मा अश्रयायी तौर पर स्वन-संसार की खोज करता है और नृतिक शरीर का लागू किए बिना स्वन-शरीर के साथ स्वन-संसार में विवेश करता है। गहन निद्रावस्था में जीवात्मा ब्रह्म में— मन और दुःख से अपभ्रंशित— पूर्णतः लोक रहता है। परब्रह्म, अथृतु वैशिक चेतना, तीनों अवस्थाओं में प्रवृत्तार्थी के रूप में हगे देखता है। भूरुप के बाद जीव एक शरीर छोड़कर दूसरा प्राप्त कर लेता है। जीव बननमय हो जाता है, जो जाता है और अपने वास्तविक प्रकृति की खोज के द्वारा मुक्त होने का प्रयत्न करता है। ब्रह्म की दिशा में की पाई लम्बी और दुर्दह आयातिक पात्रा में पुनर्जनन जीव को नृतिक शरीर रूपी यथा बदलने की सुविधा प्रदान करता है, समस्त कर्म की समाप्ति होने तक जीवात्मा विभिन्न नृतिक शरीरों को ग्रहण करता रहता है और कर्म-निग्रह के बाद ब्रह्म प्राप्ति का ध्यान पूर्ण कर लेता है।

कहा जाता है कि ब्रह्म माया का आवरण धोय लेता है, जीवात्मा बन जाता है, मानवीय और अन्य रूप धारण करता है, मात्र ब्रह्मान्तक खेलने के लिए। भिगने माटक के चेतन, निर्माण, निर्देश, समस्त अनभिता तथा साथ ही साथ दर्शन, सब एक बही है। प्रभु त्वरण करता है, अपनिता करता है और अपनी ही सृष्टि का आनंद भीतर है। हमारी सभी समस्याएं विद्यमान हो जाती हैं, यदि हम इस बात का ध्यान रखे कि हम केवल एक भूमिका का अधिनस्त कर रहे हैं और कर्मी ची चटनाओं को निरांत व्यवस्थित रूप में न ले। ब्रह्मान्तक के अनिवव, प्रभु को देखने के लिए हमें लोक से अपने मन को तरसक एवं अनावश्यक रखना होगा। विग्नना केवल ब्रह्मान्तक-ह्रास से सम्बन्ध रखता है, जबकि आध्यात्म ब्रह्मान्तक के परम अनिवव के ह्रास का विवेकशाल— जैसा कि आनंद का रूप से जीवात्मा-अनिवव हमें समझता है— करता है।

श्री मदुपदास: रससिद्धि स्रवण है सरस्न प्राण्याम एव च।
अधिमाय नमोचाय विष्णुनाम उपस्थिते ।
उपनमान्त स्थितं यापि भूमिजानं वा गुणानविन्यातम।
विसुधा नानुपश्यति प्रस्वति ज्ञानचयुष्य।
अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी

यह जीव कर्म, चउँ, तथा, रस्मा, प्राण और मन के द्वारा विविधों का संगम करता है। अजानी जन जीव को एक सरलर भे इससे दरीश में जाते है अपना प्रारम्भ में विभिन्न गुणों से समानित होकर विविधों को भूलाते है। नहीं देख सकते। (१८.३९)।

आध्यात्मिक आनन्द की सुभाष के उच्चतर स्वाद को विकसित करने पर इन्द्रिय भागवती सुवर्ण का स्वाद जो देखता है। आध्यात्मिक आनन्द का प्राणिय व्यक्ति की ऐंशिक शृंखलक का कामना की सबसे पूर्वत है। शृंखला गलत काम, जो ऐंशिक सुवर्ण की अवस्था सूर्य कामनाओं के कारण आया। देखता है, करने से परिणत करती है।

यतको योगिनधौर कपनत्स्व आर्यन्य अवस्थितम।
यतनोद्यन्त्य आनुजानामां नैन पदवन्त्य अवेतसः। (३९.१२)

प्रयन करनेवाले योगिय जन अपने अत्यकरण में विभिन्न जीवायामा को देखते हैं। अनुवृत्त अत्यकरण-यात्रा अयुक्तकी मनुष्य यात्रा करते हुए मी आत्मा को नहीं देख (या जान) सकते हैं। (२५.३१)

यद्र सव चर्मपुर यो तारे
यद्र आत्मिकता ताजा जगद पश्विन्देशितम।

यह चन्द्रसमिय यथा चानोत तता तेजस विविध मानकम। (२५.२२)

जो नैन सुवर्ण में स्थित होकर सारे संसार को प्रकाशित करता है तथा जो नैन चन्द्रसमि में और अमि में है, उसे तूफ में भी नैन जाना। (२५.१६, २५.०६ और देखें।) (२५.२३)

सुवर्ण का प्रकाश उस (प्रमु) की दीपिका का प्रतिक्रिया है (कृ.०. १००,०३)। इन्द्रजाल सर्वत्र अपने में, शवने और समस्त लोक में — उस पर व्यवस्थितको को देखते हैं, जो दूरस्थ विश्व का दृश्य है तथा सर्वत्रस्वाभाविक दिन के प्रकाश की तरह दृश्यतम है (वाण. ३.०८, ०३)। संसार और उसके सब पदार्थ इन्द्रजव के विद्युत स्पर्श पर छोटी हुई छाया और प्रकाश से बने चित्र मात्र है (योगानन्द)। सूर्य का कहाना है— प्रमु सर्वग, आकाश और धरती की ज्योति है (सूर्य ३.३८)।
श्रीमदभगवदगीता

पावन अमर्योगि का आकार एक दिव्य ज्योतिः-क्रजा के वृद्ध युल्लभ अंगुला है। यह परशुराम की ज्योति ही है, जो अमर्योगि में है और जो सूर्य, चन्द्रन, तारागण आदि आकारांगण के सब प्रकाशगुण नहीं हैं। यह उसी (परशुराम) की ज्योति है, जो काणो में है, दीपकों और शानों में है और क्रजा के रूप में सब प्राणियों में है। उसी का प्रकाश सब प्रकाशों में निहित है और लोक की समस्त क्रजा का स्रोत है। परशुराम की सत्ता के किनारे अग्नि चारा के एक तिनके को भी जलाने ने असम्भव हैं। परशुराम की इस ज्योति की अनुभूति या प्रतीति तब तक नहीं हो सकती, जब तक व्यक्ति ने अपने मन को पुरूष: सशक्त और शान्त, बुद्धि को सुदृढ तथा इच्छा-अनुभूति शालिकों को विकसित न कर लिया हो। साथ ही व्यक्ति को इतना सशक्त भी होना पड़ेगा कि वह धर्म समाधि स्थान सब ज्योतियों की इस ज्योति की अनुभूति के समय उत्तर देने वाले मानसिक आधार को सहन कर सके।

जैसा कि प्रिंम के अभाव में मानक-वस्तुओं को सूचना दर्शन का समस्त प्रविशिख परिदर्शित नहीं हो सकता, तैयर ही हम प्रतिकृप्ता और शान्त: के पड़े बिना परशुराम की ज्योति को नहीं देख सकते। जिन योगियों ने अपनी चेतना को परम चेतना में पूर्ण: आत्मस्वात कर दिया है, वे ही समाधिः में अमर्योगि के दर्शन कर सकते हैं। वह समस्त लोक परशुराम की क्रजा से ही टिका है और उसी की गहिना को प्रशिक्षित करता है।

गाम आविष्कर च भूमानि धार्य एवम् आविष्कर
ुपन्नाम चौर्यिः सर्वं सोमो भूतवा रसात्मकः। ॥१३१॥

मैं ही पुराण में प्रदश करने अपने आज से सबसे भूतों को धारण करता हूं और सब देखताना चन्द्रमा देखकर सभी व्यक्तियों को इस प्रकार सहन करता हूं। (१३५.१३)

अहं वेदान्तो भूतवा प्राणिना देवभूतः आविष्कर।
प्राणायामरमुक्तः पथायम् अत्र चतुर्विंम्यम्। ॥१३४॥

मैं ही सब प्राणियों के शरीर में विशेष वेदान्त अनिन हूं, जो प्राण और अपना चारु से मिलकर चारो प्रकार के आत्र को पचाता है।
(१५५.१५)}
तथा ही सभी प्राणियों के अनन्तकरण में स्थित हैं। स्मृति, ज्ञान तथा जोका समाधान (विशेष या सामान्य द्वारा) भी पुजार हो होता है। समस्त वेदों के द्वारा जानने योग्य वस्तु, वेदान्त का कर्म तथा वेदों का जानने वाला भी में ही हैं। (६.३९ भा देखें) (९५.१५)

प्रभाव सब राशियों का स्वभाव है (पृथ्वी ९०१.०३). प्रथु समस्त प्राणियों की जीत के रूप में अनन्तकरण में निवास करते हैं, न कि शरीर के मूल्य झंडे में, जैसा कि साधारण गलती से समझा जाता है।

शर, अधर और अधारातीत क्या हैं?

श्रा इमी पुरुषी लोकें शरामाधार एवं च।
श्रा: समालिक भुतान मूर्तस्याधार उच्चत के।

लोक में (परशु द्वारा) श्रा (नवर) पुरुष और अधर (अविनाशी) पुरुष नामक दो दिव्य स्वरूप हैं। समस्त ज्ञान शर पुरुष का विस्तार है और अधर पुरुष (अव्यावृत्त आत्मा) अविनाशी कहलाता है। (९५.१६)

यहाँ दिव्य पुरुष, प्रभागिता परमालमा, के दो स्वरूपों — शर पुरुष और अधर पुरुष — का वर्णन किया गया है। समस्त बृहस्ति — सब देवों, चौधर लोगों से लेकर पाप के लिखे तक — दिव्य पुरुष के शर स्वरूप का विस्तार है। अधर पुरुष (अव्यावृत्त आत्मा) बृहस्ति शक्ति है, जो समस्त कारणों का गुण कारण है, स्वभाव है; जिससे शर पुरुष, बृहस्ति और असंख्य प्रभाण्ड उत्सर्जन होते हैं; जिससे उनका योग्य होता है और जिसमें उनका पुन: बिल्कुल होता है। शर और अधर पुरुष (आत्मा) को रूप १३.०७-०२ में क्षेत्र और क्षेत्रिय तथा द्वन्दव ४८.०३-०४ में दृष्टि (अव्यावृत्त आत्मा) और नैस्यद्वितीय पिता भी कहा गया है।
प्रथमपिता परमात्मा का अवरोहण

नोटः निम्न व्याख्या केवल उन प्रबुद्ध पाठकों के लिए है जिन्होंने गीता के अध्ययन में कुछ वर्ष लगाए हैं। पाठक-प्रणीत निम्न व्याख्या है हिंदू वैश्विक व्यवस्था को श्रीमद्रत्मक (Hierarchy of Cosmic Control) से अंतर्गत करते हुए रेखाचित्र को देखने के लिए कुछ वेबसाइट website: www.gita-society.com/section2/genesis.jpg पर जाएं। कोष्ठक के अन्दर लिखे अंकों को website के रेखाचित्र में देखें।
अन्तर्द्रोणीय गीता सोसाहोतो

वैदिक सृष्टि-रास्ता में आकाश (Cosmic Space) पंच प्रमुख क्षेत्रों में विभाजित है—
(1) विदाकाश, (2) सदाकाश, (3) परमाकाश,
(4) प्रकाशपदकाश, और (5) घटकाश.

(1) विदाकाश

परकाश परमाल्या (1) का निवास, परंतु खाता (गीता 19.06); सर्वौपर स्थान, विदाकाश, में स्थित है। यहाँ शोकुण्य परमाल्या,
परमपु, परकाश, चूर्णित, सचिवालाय, जिता, परमेश्वर आदि
विभिन्न नामों से जाने जाते हैं।

(2) सदाकाश

अक्षपाल्य (2) सदाकाश में परकाश परमाल्या की सत मृत्यु का
विस्तार है, जैसा कि गीता 10.04 और 11.27 में लिखा गया है।
गीता के स्कोर 6.03 और 19.15 में उल्लिखित अक्षपाल्या के तीन
प्रमुख विस्तार (या पाद) है—सता (2a), सर्वकाश या चित (2b),
और आनंद (2c) अथवा केलकाशा। सतें स्थान को आलोचा या
परस्पर भी कहा गया है। चित स्वभाव के और भी विभिन्न नाम है,
जैसे — चैतन्यपाल्या, चरित्रविविध और राजा। केलकाशां की ऊर्जा,
आनंद, को गीता के स्कोर 4.05 और 7.25 में योगिता भी कहा
गया है।

(3) परमाकाश

चित (2b) और आनंद (2c) प्रकृतियां परमाकाश में चुनौतियाँ,
अलका आलकाया या अयत्पाल्या (3) के अभ्यास, हेतु संयुक्त होती
है। इसे कई नामों से जाना जाता है—जैसे अनिवार्य-विश्व-विलाय, अनिवार्य, आदिपूर्व, आदिपूर्वकृति, अनिवार्य, वियह और सर्वकाश-कार्यालय, अयत्पाल्या, जो परकाश (परमाल्या) का लघु अंश मात्र है,
अनुन्नत प्रकाश में विस्तार पाता है, जैसा कि गीता 8.16 और 9.59
में कहा गया है। परमाकाश योगिता की प्रमुख शक्तियों—आवरण
शक्ति, विषय हार्दिक, विग्रह शक्ति, चच्चीविद्या शक्ति, प्रज्ञा, कर्म तथा
ऊर्जा को पदार्थ और पदार्थ को ऊर्जा में परिवर्तन करने की शक्ति
आदि—का भी आवश्यक है।
भगवानुकृष्ण परमाकाश में गोलकोणाथ के रूप में जाने जाते हैं, गोलकोणाथ अर्थात् अम्सतत्त्वक दो प्रमुख विश्लेषण हैं—
ब्रह्माण्ड या प्राण-ब्रह्म (3a) और मायाप्रकाश (3b). प्राणब्रह्म नादशिव या अंतर (3a.1) में विवाहार अति प्रायः और अंतर शिव या 
अंतर (3a.1a) में (पीता 90.30), प्राणब्रह्म का अवरोधण गायत्री (3a.2) (पीता 90.30) में भी होता है, जो बदोका आवाज है (पीता 
7.00).
मायाप्रकाश परमाकाश में योगनायक का प्रतिविश्व है, यह 
अन्य ब्रह्मिक परिवर्तित कष्टी— जैसे महामाय, कालमाया और नाया 
(3b.1) (पीता 7.00) — भी अपवृत्त होता है.

(४) ब्रह्माण्डकाशा

माया अपनी सर्वनामत्वक ऋषि शक्ति के लार्जं से ब्रह्माण्डक
काशा का निर्माण करती है; ब्रह्माण्डकाशा में माया देवी 
हिरण्यकम (Golden Egg) का भी निर्माण करती है, अविदारण (अथवा 
आदि पुरुष (४), क्ष दुरुष, सामु, महादेव) और महादेवी (अथवा 
आदि प्रकृति, मां, अन्य) हिरण्यकम में एक कल्य प्राप्त या 311 Trillion 
solar years तक योगनिःश्रृंखला में रहते हैं (पीता 6.08). अंतर का 
ब्रह्माण्ड हिरण्यकम को स्त्रित्व अथवा दाता ब्रह्माण्ड 
— जो 
पुरुष (4a) या नारायण, (पीता 6.04, 97.91) नाम से भी जाने जाते 
है — और अथवा या प्रकृति (4b) (पीता 6.04) का उद्भव करता है.
प्रकृति के तीन गुण हैं (अथवा अर्थ भी देखिए) प्रकृति के इन तीन 
गुणों का समृद्धय नरकद, तथागत अथवा गहन (4b.1) भी 
कहता है. महाविश्वु अन्य सृजनशक्ति से घटाकाशा में अन्तर 
ब्रह्माण्ड (Cosmic Eggs) की उत्पत्ति करते हैं.

(५) घटाकाशा

घटाकाशा (अथवा विश्वुलोक) में ब्रह्माण्डकाशा के नारायण या 
महाविश्वु विश्वु (५) के रूप में प्रकट होते हैं, जहाँ उनको हिरोनक- 
विश्वु भी कहा जाता है और वे अपनी भूमिका का विस्तार ब्रह्मा (५b) 
और शंकर (५c) के रूप में करते हैं. ब्रह्म सात स्वर्ग, सात ब्रमणो, 
जस्तही गं, धरा और अन्य नारायण नक्षत्रों का सृजन करते हैं.
अन्तर्राष्ट्रीय गीता सोसायटी

आशिक प्रलय-काल (गीता 8.५७) में गीता की समस्त सृष्टि हिदायदक विश्व के उद्धर में समाहित होती है। नारायण अपना विस्तार निरंजन देव और इश्वर के रूप में भी करते हैं। निरंजनदेव महत्त्व को सक्रिय कर संघीय (5d) — प्रश्नी, जज, अभिन, बापु, आकाश — का निर्माण करते हैं। (गीता 5.०४) भी देखें।

पंचवृत्त विस्तृत होकर २४ तत्त्वों (गीता १३.०६ में व्याख्या देखें) के बने हुए विषय में परिवर्तित हो जाते हैं। विषय से जीवों के पारंपरिक शरीरों की रचना पृथ्वी पर की जाती है, जब नारायण अपनी जीवन-शक्ति का बीज (स्थान ७.९०, ७.३६ और ७.४४) विषय में प्रस्थापित करते हैं और इश्वर के रूप में समस्त जीवों के अंतःकरण में निवास करते हैं। (७.०४ और ७.५१ भी देखें) जीवजन्तु जब तक नायक द्वारा निर्मित अन्न के पद्धत में कारण शासित धारणा में रहता है तब तक पृथ्वी पर चौराही लख सौनियों में आवास करता रहता है। जीव जब समय मौका प्राप्त करता है जब उसे अपने अच्छे कामों या भगवद-कृपा से किसी सदृश या गीता द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है और यह अनुभव कर लेता है कि वह पारंपरिक शरीर या कर्ता नहीं है, कर्ता नरमण का दैत्य माध्यम और अभिश्च अंग, आत्मा है।

गीता से होकर और घटकाश में हर वस्तु का कहलाती है। सदृश और नयाकामा में हर वस्तु अत्य (अवस्थानी, शास्त्रवत) कहलाती है। परमात्मा का का और अज्ञात दोनों से परे, गीता के स्थान १५.९८ में, अत्यन्तित कह गया है।

यो मायां एक्वु अत्यन्त: जानानि पुरुषोनमम।
स सर्वनाश भन्ति मा सर्वभासेवं भारत। ।१९१॥

हे अर्जुन, मुख पुरुषोत्तम को हि प्रकार तन्त्र: जाननेवात्र झानी (भगवान से) निरंजन युई यस्य लक्ष्यं भवता (अर्थात् भक्ति और प्रेम करता) है। (५.१४, ५.२६, ५.६६ भी देखें।) (५.१९)

इंद्र गुरुमं स्वास्थम् इदम् उक्तं मया।
एतत् वृद्ध्वां वृद्धिमानोऽस्यं बुद्धिन्द्रवं भारत। ।१००॥
श्रीमद्भगवद्गीता

हे नियषाप अर्जुन, इस प्रकार मेरे द्वारा कहे गए इस गुरुतम शास्त्र को तत्वत: जानकर मनुष्य ज्ञानवान् और कुतार्थ हो जाता है।

(१५.२०)

इस प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुन के संबंध में भ्रमविधा तथा योगास्त्र विषयक श्रीमद्भगवद्गीतातः क्रमिक उपनिषदों का पुरुषोत्तमयोग नामक अध्याय पूर्ण होता है।

(संपा)
उपसंहार
भगवानु श्रीकृष्ण का अंतिम संदेश

विद्वं धर्म-संस्कारप्रण के दूसर कार्य को सम्पन्न करने के बाद इस पूर्वे कर्मकेष्ठ द्वारा प्रथम करने की पूर्वसंख्या पर भगवान कृष्ण ने अपने परंपरिय मकर और अनुगमें वन्धु उद्धव को अपना अंतिम संदेश दिया। एक हजार जयकों से भी अधिक लघु इस उपदेश के उपलब्ध उद्धव ने कहा— हे प्रभो, मेरे दिशा में अधिकार कर्म के लिए उस योग का पालन निर्देश हो बहुत कठिन है, जिसका वर्णन आपने पहले अर्जन के और अब मेरे समय प्रस्तुत किया है, क्योंकि उसके लिए वेण्याम इंद्रियों पर नियंत्रण पाना अत्यन्त आदर्शप करता है। कृपया पुरे प्रभृतिप्रकाश का सरल और संक्षिप्त मार्ग बताएं। उद्धवों को प्रारंभी पर भगवान कृष्ण ने आधुनिक पृथिवी के लिए आममार्ग के जिन अनिवार्य तत्त्वों का वर्णन किया, वे लिखित हैं—

(१) विना स्वयंपुर्ण उद्देश्य के मेरे (प्रभु के) लिए मेरी शपथ के अनुप्रयोग अपने कर्मका फलोप करता। यही कार्य को प्रारंभ करने से पहले, कार्य सम्पन्न होने के बाद और निष्क्रिय होने समय भी सबा मेरा समर्पन करा। (२) मनसा-वाचा-कर्मण सब जीवों में मेरा ही दर्शन करने का अभाव करो और मन से सब के सम्प्रक्ष हृदर्दशक प्रणाम करा। (३) अपनी प्रस्तुत कृपकारिक दशक ने जागृति करो और मन, इंद्रियाँ तथा स्वास्थ्य और माया के निर्देशकों के माध्यम से प्रभावण अपने पौरात भगवान को जागृति को देखो, जो सब माया माध्यम के रूप में प्रयोग कर सत्य सब कार्य कर सकते है।

योगी पुरुषों अलग कहते हैं— जो यज्ञि अपने का पूर्ण-प्रकृति भा का जीवनकेष्ठ और माध्यम मात्र जानता है, वह सत्ता का ज्ञान है। विद्वं और मायाभ-मान के वातावरण तत्त्वों से सब इतरों का इतना ही आत्मार्थ है। हरिहरणन गिरिया कहते हैं प्रभृति सबमें है और समीपसम है। अतः यदि तुम्हें प्रभृति का पाना है,
श्रीमदभगवदगीता

तो तुमें उसकी खोज हर अणु में, हर पदार्थ में, हर शारीरिक क्रिया में और हर मानव में सम्पर्क की भावना से करनी चाहिए।

पूर्ण जो कहते हैं— हमें भगवान का माली होना चाहिए। ध्यान से उपवन की देखभाल करने हर कभी भी हमें माहबुबन नहीं होना चाहिए कि कमा पुष्पन्त पल्लवित होगा, कमा फल देगा और कमा सुख जागूगा, मर जागूगा। किसी वर्तु की अपेक्षा कृष्णा की जननी है और स्वेकृति शानति देता है। भगवान् कृष्ण ने अन्य शास्त्रग्रन्थों में भी प्रमुखप्रति के तालिकाकृति झान का सारांश इस प्रकार दिया है—

परमप्रभु कृष्ण ने कहा— जो पुष्प परमपरम को जानना चाहता है, उसे केवल यह समझना चाहिए कि मैं सुखि के पहले भी विधमान था, मैं सुधि में विधमान हूँ और प्रौढ़ के बाद भी होगा। श्री अल्पना मेरी माया के अतिरिक्त कुल भी नहीं हैं। मैं सुधि में विधमान हूँ और सुधि के बाद भी। मैं सर्वव्यापी परमप्रभु हूँ, जो सर्वभ, रघु वर्त्तमानों और रघु कालों में विधमान है।

हरि ओ तत्सत् हरि ओ तत्सत् हरि ओ तत्सत्
श्रीकृष्णपूर्ण अवमुख कृपया
अनु शालिक शालिक शालिक।

यह प्रस्तुत भगवान् कृष्ण को समर्पित है
प्रस्तुत पाठों को अच्छाई, समृद्धि,
और शालिक प्रवचन करें
अंतरराष्ट्रीय गीता संसाधनो